द्वितीय विस्तारित संस्करण

गीता आचरण

एक साधक के दृष्टिकोण से

के. शिव प्रसाद

'गीता आचरण', श्रीमद्भगवद्गीता के व्यावहारिक अनुभवों से आमजन को अनुभूत कराने का एक श्रृंखलाबद्ध प्रयास है। यह अनुभव श्रृंखला 'डेली वर्ल्ड' समाचार पत्र में हर रविवार को अंग्रेजी में प्रकाशित हो रहा है और इसे dailyworld.in पर भी देखा जा सकता है। इसके साथ ही यह 'पंजाब केसरी' अखबार में हिंदी में प्रत्येक मंगलवार को प्रकाशित होता है और इसे www.punjabkesari.in पर भी देखा जा सकता है। यह GitaAcharaninhindi.blogspot.com पर भी देखा जा सकता है।

ये सभी लेख, लेखक द्वारा बनाए गए पॉडकास्ट पर भी उपलब्ध हैं और ये एंकर, यूट्यूब, स्पॉटिफाई और ऐप्पल पॉडकास्ट जैसे प्लेटफॉर्म पर मौजूद हैं। इसे Anchor.fm/GitaAcharan, facebook.com/GitaAcharan पर एक्सेस किया जा सकता है।

यह हमारे वेबसाइट gitaacharan.org पर भी उपलब्ध है।

गीता आचरण

एक साधक की दृष्टि से

विषय सूची

प्रस्तावना xv

आभार xvii

1. अहंकार से आरम्भ 1
2. मंजिल एक रास्ते अनेक 3
3. वर्तमान में जीना 5
4. दिमाग का खेल 7
5. ज्ञान, कर्म और भक्ति योग 9
6. इरादे को पहचानें 11
7. निमित्त मात्र 13
8. व्यक्त और अव्यक्त को समझना 15
9. मित्र और शत्रु की पहचान 17
10. महामारी में श्रीकृष्ण 19
11. सुख के पीछे चलता है दु:ख 21
12. मन पर नियंत्रण 23
13. साक्षी होना 25
14. सत्व, तमो और रजो गुण 27
15. समत्व 29
16. गुणातीत होना 31

17. चार प्रकार के 'भक्त' 33
18. 'सत्' एवं 'असत्' 35
19. रचनात्मकता सृजन करती है, रचनाकार नहीं 37
20. मृत्यु हमें नहीं मारती 39
21. रचनात्मकता को नष्ट नहीं किया जा सकता 41
22. संतुलन परमानंद है 43
23. आत्मा अव्यक्त है 45
24. आत्मा पुराने शरीर को बदलती है 47
25. अहंकार मिटने पर हासिल होती है 'मंज़िल' 49
26. गुलाब कभी कमल नहीं बन सकता 51
27. स्वधर्म से सद्भाव 53
28. परमात्मा से एक होना 55
29. संतुलन ही परमानन्द 57
30. पानी, रेत और पत्थर पर लेखन 59
31. छोटे प्रयास से कर्मयोग में बड़ा लाभ 61
32. मन की शांति की आधारशिला 63
33. वेदों को पार कर अंतरात्मा को पाना 65
34. कर्म पर ध्यान दें, कर्मफल पर नहीं 67
35. जीने का तरीका है 'कर्मयोग' 69
36. कर्म फल वो नहीं जो प्रतीत होता है 71
37. वही अर्जुन वही बाण 73

38. क्रिया और प्रतिक्रिया 75
39. दोहराव प्रभुत्व की कुंजी 77
40. कर्तापन की भावना को छोड़ना 79
41. आंतरिक यात्रा के लिए सुसंगत बुद्धि 81
42. अहंकार से बचो 83
43. 'तटस्थ' रहना 85
44. संतुलित निर्णय लेना 87
45. जन्म-मृत्यु के भ्रमपूर्ण बंधन 89
46. क्या हमारा है, क्या नहीं 91
47. भ्रम से बचो 93
48. स्वयं से संतृप्त 95
49. स्थितप्रज्ञ आंतरिक घटना है 97
50. राग, भय और क्रोध 99
51. घृणा भी एक बंधन है 101
52. समेटना ही बुद्धिमानी 103
53. इंद्रिय विषयों की लालसा को छोड़ना 105
54. इंद्रियों की स्वचालितता 107
55. दुष्चक्र और गुणी चक्र 109
56. आध्यात्मिकता में कारण और प्रभाव 111
57. मध्य में केंद्रित 113
58. इच्छाएं और जीवन की चार अवस्थाएँ 115

59. भौतिक जागरण और आध्यात्मिक नींद 117
60. विषाद से ज्ञानोदय तक 119
61. अनिश्चित मन के लिए निश्चितता 121
62. 'मैं' से संन्यास 123
63. मिथ्या और दम्भ 125
64. हमेशा अपना सर्वश्रेष्ठ करें 127
65. नि:स्वार्थ क्रियाएँ सर्वोच्च शक्ति रखती हैं 129
66. समर्पण या संघर्ष 131
67. सम्बद्ध और असम्बद्ध 133
68. उदाहरण के द्वारा नेतृत्व 135
69. अभिनेता के साथ-साथ दर्शक भी 137
70. समय को एक मौका दें 139
71. गुणों का परस्पर प्रभाव 141
72. धारणाओं का कैदी 143
73. समर्पण की कला 145
74. श्रद्धा से आनंद 147
75. धर्म एक है 149
76. वासना से सावधान रहें 151
77. दर्पण जैसा साक्षी बनें 153
78. इच्छा की शक्ति 155
79. समय से परे 157

80. माया की अभिव्यक्ति 159
81. 'मैं' समावेश है 161
82. हम जो बोते हैं, वही काटते हैं 163
83. असत्य सत्य पर पनपता है 165
84. मुमुक्ष के तरीके 167
85. कर्म, अकर्म और विकर्म 169
86. कामना और संकल्प छोड़ दें 171
87. नित्य-तृप्त 173
88. पाप के पहलू 175
89. स्वयं को मुक्त करना 177
90. बलिदान का बलिदान करना 179
91. स्वयं का अध्ययन 181
92. स्वास के माध्यम से आनंद 183
93. संतुष्टि ही अमृत 185
94. सीखने की कला 187
95. पाप के समुद्र के लिए ज्ञान रूपी नाव 189
96. बुद्धिमत्ता स्वयं में है 191
97. ज्ञान की तलवार 193
98. निष्पादन करें या त्याग करें 195
99. द्वेष का त्याग करें, कर्म नहीं 197
100.प्रतिक्रियात्मकता से सक्रियता तक 199

101.कमल के पत्ते का अनुकरण 201
102.कोई पसंदीदा परिणाम नहीं 203
103.पुण्य और पाप की जड़ें 205
104. निष्पक्षता प्राप्त करना 207
105. चिरस्थायी आनंद 209
106. खुशियों का लगाम 211
107. परमानन्द के लिये ध्यान 213
108. भय को पार करना 215
109. जो कर्म फल त्याग दे वही संन्यासी 217
110. द्वंद्वातीत से शांति 219
111. स्वयं से मित्रता 221
112. भीतर के शत्रु से सावधान 223
113. परिस्थितियों को यथार्थ रूप में स्वीकार करना 225
114. अति सर्वत्र वर्जयेत 227
115. ध्यान की एक विधि 229
116. अध्यात्म का सहज मार्ग 231
117. संयम की कला 233
118. परिवर्तन ही स्थायी है 235
119. जागरूकता और करुणा का मिलन 237
120. सभी में स्वयं और स्वयं में सभी को देखना 239
121. नमस्ते की ताकत 241

122. 'यह वह है' का मंत्र 243
123. सुखसाधन की परिधि 245
124. मेहनत का कोई विकल्प नहीं है 247
125. भाग्य का आधार 249
126. योगी सर्वश्रेष्ठ है 251
127. सीखने के लिए सुनना सीखो 253
128. हर अंत एक शुरुआत है 255
129. भगवान 'पासा' खेलते हैं 257
130. अज्ञेय को जानना 259
131. भ्रमों को पार करना 261
132. दुर्गति दुर्गति को ही लाएगी 263
133. श्रद्धा ही ताकत है 265
134. खुद से प्रतिस्पर्धा 267
135. योग-माया 269
136. द्वंद्वों की भ्रान्ति 271
137. 'अ' से 'ज्ञ' का मंत्र 273
138. भ्रम पर काबू पाना 275
139. 'ब्रह्म' की अवस्था 277
140. कर्म क्या है 279
141. ऊर्जा और पदार्थ की अंतर-क्रिया 281
142. समाप्त होने से पहले शुरू करो 283

143. जब कर्म ही पूजा बन जाए 285
144. दिल और दिमाग 287
145. पुनर्जन्म पर पुनर्विचार 289
146. फोटॉन की सवारी करना 291
147. अनेकता में एकता 293
148. ऊर्जा का विवेकपूर्ण उपयोग 295
श्लोक का सूचक 297

प्रस्तावना

श्रीमद्भगवद्गीता, भगवान के गीत, कुरुक्षेत्र की रणभूमि में भगवान श्रीकृष्ण और योद्धा अर्जुन के बीच का संवाद है। जिस का मूल संस्कृत में है। हालांकि सभी भारतीय भाषाएं कमावेश संस्कृत पर आधारित हैं, लेकिन बहुत से लोग इस भाषा से परिचित नहीं हैं। केवल अनुवाद हमारी मदद नहीं करेगा क्योंकि बहुत सी शिक्षाओं की समकालीन संदर्भ में व्याख्या की आवश्यकता है। यह संकलन उन व्यक्तियों के लिए है जो संस्कृत से अपरिचित हैं लेकिन फिर भी दैनिक जीवन में गीता का ज्ञान पाना चाहते हैं।

भगवद्गीता शाश्वत और व्यापक दोनों है। लगातार बदलती भौतिक दुनिया में, इन शिक्षाओं को समकालीन परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए समय-समय पर एक व्याख्या की आवश्यकता होती है। यह संकलन इस दिशा में एक प्रयास है। व्यापक होने के नाते, गीता में परम स्वतंत्रता यानी मोक्ष प्राप्त करने के लिए, सभी संभव मार्गों को शामिल किया गया है। कुछ रास्ते विरोधाभासी प्रतीत हो सकते हैं लेकिन अपने व्यक्तित्व के आधार पर व्यक्ति को अपना मार्ग चुनना है। यह संकलन सभी मार्गों को प्रस्तुत करता है।

भगवद्गीता के सभी अनुवादों और व्याख्याओं में व्याख्याकर्ता का दृष्टिकोण शामिल होता है। यदि दुभाषिया

और साधक के व्यक्तित्व अलग-अलग हैं, तो गीता का पूरा आनंद आने में बाधा आ सकती है। इस तथ्य को सावधानीपूर्वक ध्यान में रखने की आवश्यकता है। जहां तक संभव हो इन विसंगतियों को हटाने के प्रयास किए गए हैं।

जब किसी भी ज्ञान को एक पुस्तक का रूप दिया जाता है, तो इसके सैद्धांतिक लगने की संभावना है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि भगवद्गीता दार्शनिक ग्रंथ नहीं बल्कि अनुभवात्मक मार्गदर्शक है। इसलिए, जब कोई उन्हें जीवन में अनुभव करता है तो ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। जब तक हम परम स्वतंत्रता प्राप्त नहीं करते तब तक निरंतर बाहर और अंदर की दुनिया से तालमेल की आवश्यकता है।

अच्छी समझ के लिए एक समय में एक अध्याय पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। चूंकि पुस्तक स्वतंत्र लेखों के रूप में हैं, इसलिए किसी भी अध्याय को पढ़ने के लिए चुना जा सकता है और इसका आनन्द लिया जा सकता है।

गीता आचरण का पहला संस्करण अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ है। इसके बाद इस पुस्तक को हिंदी में प्रकाशित किया जा रहा है ताकि यह पुस्तक देश-दुनिया के हिन्दी भाषी लोगों तक पहुंच सके।

इस संकलन का अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद उतना ही कठिन था जितना कि अंग्रेजी में इस पुस्तक का संकलन एवं प्रकाशन। सम्पूर्ण भावनाओं को अर्थ समेत प्रस्तुत करने में की कोशिश की गई है, ताकि पाठक गीता का पूरा रहस्य समझ सकें।

आभार

डेली वर्ल्ड अखबार के एडिटर-इन-चीफ मनीष तिवारी के साथ एक आकस्मिक बातचीत से इस संकलन की प्रेरणा मिली। मैं उनके निरंतर प्रोत्साहन, सलाह और मार्गदर्शन के लिए उनका आभारी हूँ। जसवीर मेरे प्रिय मित्र हैं और मैं श्रृंखला की शुरुआत में चर्चाओं और पॉडकास्ट श्रृंखला के संयोजन के लिए उन्हें धन्यवाद देना चाहता हूं। मैं प्रशासनिक सेवा में मेरे अन्य सहयोगी साई प्रसाद को भी धन्यवाद देना चाहूंगा जिन्होंने प्रत्येक लेख पर चर्चा करने और संपादित करने के लिए समय निकाला।

निस्संदेह, इस तरह के कार्य परिवार के समर्थन के बिना कभी भी पूरे नहीं होते हैं। मेरी पत्नी डॉक्टर कमला जो पेशे से दन्त चिकित्सक हैं, वही मेरे लिखे की प्रथम पाठक होती हैं। पेशे के प्रति अपने समर्पण के माध्यम से वे स्वयं भी आध्यात्मिकता से भरी हुई हैं। मरीजों के जीवन से जुड़ी कहानियां उनके अनुभव संसार को वृहद बनाती हैं। उनकी प्रतिक्रियाओं का उपयोग प्रत्येक लेख को आकार देने के लिए किया गया है। अंतिम प्रारूप मेरे दोनों बेटों कुनाल और कौटिल के द्वारा देखा जाता रहा है। उनके योगदान ने लेखों को युवा परिप्रेक्ष्य दिया है और कई लेखों में उसी सोच को शामिल करने के लिए समायोजित किया गया है।

हिन्दी पुस्तक का संस्करण आदरणीय विजय चोपड़ा जी के आशीर्वाद के बिना असम्भव था और इसके लिये मैं उनका हृदयपूर्वक धन्यवाद करता हूँ।

मैं अविनाश चोपड़ा जी का भी धन्यवाद करता हूँ, जिन्होंने इन लेखों को समाचार पत्र पंजाब केसरी में प्रकाशित करना शुरू किया।

पुस्तक का प्रकाशन ए. वी. एस. राव के सहयोग के बिना सम्भव नहीं था, जिनके अथक प्रयासों ने इसे समय मे पूरा करने में अपना योगदान दिया। वह कई भाषाओं के ज्ञाता हैं, जिसके कारण यह अनुवाद अत्यन्त सारगर्भित हो सका है। साथ ही मैं आलोक वर्मा, अरुण नैथन, जसवीर और सुनील पाण्डेय का इस पुस्तक के प्रूफ सोधन हेतु आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं अपने तमाम मित्रों को भी धन्यवाद देना चाहूँगा जो हर लेख के लिए अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहे हैं। अंत में मैं प्रकाशक हरीश जैन, मोहन सिंह और करन सहित उनके कर्मचारियों को धन्यवाद देना चाहूंगा।

सधन्यवाद

के. शिव प्रसाद

2. मंजिल एक रास्ते अनेक

जैसा कि कहा गया है, 'मंजिल एक, राहें अनेक,' गीता में दिए गए सभी मार्ग हमें अंतरात्मा की ओर ले जाते हैं। कुछ रास्ते एक दूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं। हालांकि, यह एक वृत्त की तरह है जहां दोनों तरफ की यात्रा हमें उसी मंजिल तक ले जाएगी।

गीता विभिन्न स्तरों पर कार्य करती है। कभी श्रीकृष्ण अर्जुन के स्तर पर आते हैं और कभी वे परमात्मा के रूप में प्रकट होते हैं। यह समझने में कठिनाइयाँ पैदा करता है, खासकर प्रारंभिक अवस्था में, क्योंकि ये दोनों स्तर अलग-अलग प्रतीत होते हैं।

पिछली शताब्दी की शुरुआत में, वैज्ञानिकों को प्रकाश को समझने में इसी तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पहले यह सिद्ध हुआ कि प्रकाश एक तरंग है और बाद में यह ज्ञात हुआ कि यह एक कण की तरह भी व्यवहार करता है। दोनों सिद्धांत एक दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं। लेकिन प्रकाश, जिसे हम हर पल देखते हैं, प्रत्यक्ष अंतर्विरोधों का एक संयोजन है। जीवन भी ऐसा ही है।

एक बार एक हाथी एक गाँव में घुस आया और कुछ अंधे लोगों ने उसे पहचानने या समझने का प्रयास किया।

उन्होंने हाथी के जिस अंग को छुआ, उसके आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि हाथी कैसा हो सकता है। सूंड़ को छूने वाले ने कहा कि हाथी एक लंबे और खुरदुरे प्राणी की तरह है। दांत को छूने वाले ने कहा कि यह जानवर चट्टान की तरह सख्त है। एक और जिसने पेट को छुआ, उसने कहा कि यह विशाल और कोमल है।

आज दुनिया में हम जो भी मतभेद देखते हैं, उसका कारण एक वास्तविकता की अलग-अलग धारणाएं हैं। वास्तव में हाथी इनमें से कोई भी नहीं है, और यह सब भी है।

हमारी मनोस्तिथि लोगों, चीजों और संबंधों के विषय में इन व्यक्तियों से भिन्न नहीं है, और यह आंशिक समझ हमें दुख की ओर ले जाती है।

गीता अनिवार्य रूप से एक आंशिक समझ से पूर्ण समझ तक की यात्रा है।

80-20 के सिद्धांत की तरह, इस समझ के द्वारा कुछ कदम जीवन में आनंद ला सकते हैं।

9. मित्र और शत्रु की पहचान

गीता में, भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि आप स्वयं अपने मित्र हैं और आप स्वयं अपने शत्रु हैं। सुराही में फँसे बन्दर की कहानी इसे अच्छी तरह से दर्शाती है।

कुछ मेवों को एक सुराही में रखा जाता है जिसमें बन्दर का हाथ मुश्किल से अन्दर जा पाता है। बंदर सुराही के मुंह से हाथ डालता है और मुट्ठी भर के मेवा पकड़ लेता है। मुट्ठी भर जाने से हाथ का आकार बढ़ जाता है और वह सुराही से बाहर नहीं आ सकता। मेवों से भरे हाथ को सुराही से बाहर निकालने के लिए बन्दर हर तरह की कोशिश करता है। वह सोचता रहता है कि उसके लिए किसी ने जाल बिछाया है और उसे कभी पता ही नहीं चलता कि अपने विरुद्ध यह जाल स्वयं उसने बिछाया है। किसी भी प्रकार की सलाह बन्दर को इन मेवों को छोड़ने के लिए मना नहीं सकता, बल्कि वह यह सोचता है कि हम उसके मेवों को हड़पने की कोशिश कर रहे हैं।

बाहर से देखने में यह काफी सरल लगता है कि मुट्ठी को ढीला करने के लिए इसमें से कुछ मेवों को गिराना पड़ता है ताकि उसका हाथ बाहर आ जाए। लेकिन जब हम फंस जाते हैं इस सरल तथ्य को महसूस करना ही हमारे लिये एक चुनौती होती है।

बंद मुट्ठी हमारी दुश्मन है और खुला हाथ हमारा दोस्त है और इसे समझकर हम खुद को दोस्त या दुश्मन बना सकते हैं।

जीवन में, हम ऐसे ही कई जालों का सामना करते हैं। वे मेवे और कुछ नहीं बल्कि 'मैं' और 'मेरा' हैं; अहंकार उनसे हमारा हाथ बांधता है। गीता बार-बार हमें अहंकार को छोड़ने के लिए कई तरह से कहती है, ताकि हम इन जालों से मुक्त होकर परम स्वतंत्रता को प्राप्त कर सकें।

इन जालों के बारे में अहसास तब आसान हो जाता है जब हम बहुत शोर-शराबे के साथ तेज गति वाली दुनिया से हटकर अपनी गति धीमी करते हैं।

11. सुख का अनुसरण करता है दुख

द्वंद्वातीत अर्थात द्वैत को पार करना, गीता में एक और अचूक निर्देश है। श्रीकृष्ण अर्जुन को बार-बार विभिन्न संदर्भों में इस अवस्था को प्राप्त करने की सलाह देते हैं।

सामान्य प्रश्न जो मानवता को चकित करता है वह यह है कि जब हम सुख प्राप्त करने के लिए ईमानदारी से प्रयास करते हैं तब भी असुखद स्थिति या दुख हमारे पास कैसे आते हैं। अपने भीतर गहराई से देखने के बजाय, हम यह कहकर खुद को समेट लेते हैं कि शायद हमारे प्रयास पर्याप्त नहीं हैं। हालाँकि, आशा के साथ-साथ अहंकार हमें सुख की खोज की प्रक्रिया को फिर से शुरू करने के लिए प्रेरित करता है और यह जीवन के अंत तक चलता रहता है। द्वंद्वातीत की समझ इस समस्या को सुलझाती है।

व्यक्त दुनिया में, सब कुछ अपने बुनियादी रूप से विपरीत रिश्ते यानी द्वंद्व के तौर पर मौजूद है। जन्म का विपरीत ध्रुव मृत्यु है; सुख का विपरीत ध्रुवीय दुख है; हार का जीत; लाभ का हानि; जोड़ना का घटाना; प्रशंसा का आलोचना; सशर्त प्रेम का घृणा; और यह सूची खत्म ही नहीं होती।

नियम यह है कि जब हम इनमें से किसी एक का पीछा करते हैं, तो इसका ध्रुवीय विपरीत स्वतः ही अनुसरण

करता है। यदि हम छड़ी को एक सिरे से उठाते हैं, तो दूसरा सिरा उठना तय है। एक अन्य रूपक झूलते हुए पेंडुलम का है। जब यह एक तरफ जाता है, तो यह अपने ध्रुवीय विपरीत दिशा में आने के लिए बाध्य होता है।

ध्रुवीयता के सिद्धांत के अनुसार, कोविड महामारी का दर्द समय के साथ आनंद में बदल जाएगा और इतिहास बताता है कि इसी तरह की कठिन परिस्थितियों ने हमें बेहतर विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम से आनंदित किया है। चरम ध्रुवताएं, जैसे कि कोरोना महामारी, में अन्तरात्मा की तरफ यात्रा को तेज करने की क्षमता है।

श्रीकृष्ण हमें इन ध्रुवों को पार करने के लिए कहते हैं। वर्तमान में होना अतीत और भविष्य से परे है। इसी तरह, बिना शर्त प्यार, सशर्त प्यार और नफरत को पार करना है।

हमें केवल इन ध्रुवों के बारे में जागरूक होने की आवश्यकता है और जब हम उनके बीच झूल रहे हों तो उनका निरीक्षण करें। जब तक हम जीवित हैं, ध्रुवीयताओं के संपर्क में आना स्वाभाविक है और यह जागरूकता हमें उन्हें पार करने में मदद करेगी।

15. समत्व

समत्व गीता की नींव जैसा है और इसलिए इसका वर्णन गीता में विभिन्न स्थानों पर किया गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने विभिन्न स्थानों पर समत्व-भाव, समत्व-दृष्टि और समत्व-बुद्धि की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। समत्व को समझना आसान है लेकिन अंत:करण में ग्रहण करना मुश्किल है। हमारे अंदर समत्व की मात्रा, हमारी आध्यात्मिक यात्रा में हमारी प्रगति का सूचक है।

भौतिक क्षेत्र में, अधिकांश समाजों ने समत्व को सभी नागरिकों के लिए कानून के समक्ष समानता के रूप में स्वीकार किया है। श्रीकृष्ण समत्व के कई उदाहरण देते हुए कहते हैं कि विवेकशील व्यक्ति शिकार और शिकारियों; सुख और दुख; लाभ और हानि आदि को समान दृष्टि से देखते हैं।

मनुष्यों के साथ कठिनाई यह है कि हम संस्कृति, धर्म, जाति, राष्ट्रीयता, नस्ल आदि जैसे कृत्रिम विभाजनों के आधार पर स्वयं को पहचानते हैं। इन विभाजनों को दूर करके दो अलग-अलग लोगों के साथ समान व्यवहार की क्षमता ही, समत्व की ओर पहला कदम है। यह प्रदर्शित व्यवहार से कहीं अधिक गहरा है।

समत्व में प्रगति का अगला स्तर अपने क़रीबी दो

लोगों को समत्व के साथ देखने की क्षमता है। उदाहरण के तौर पर, हमारे बच्चों के दोस्तों की सफलता के लिए खुश होना, खासकर जब हमारे अपने बच्चों ने अच्छा प्रदर्शन नहीं किया; माँ और सास; बेटी और बहू के साथ समान रूप से व्यवहार करना।

समत्व का उच्चतम स्तर दूसरों को अपने समान मानने की क्षमता है। यह समान भाव बनाए रखने की क्षमता है जब दूसरों को वह मिलता है जिसके बारे में हम विश्वास करते हैं कि वह हमारा है, जैसे पदोन्नति, प्रसिद्धि, श्रेय, संपत्ति, इत्यादि। समत्व का यह स्तर तब आता है जब हम स्वयं में दूसरों की कमजोरियों को और दूसरों में अपनी ताकत देखने में सक्षम हो जाते हैं।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हम खुद को दूसरों में और दूसरों को स्वयं में देखें; और अंततः सभी में और हर जगह श्रीकृष्ण को देखें। यह और कुछ नहीं बल्कि अद्वैत है, जो कहता है कि यह दो नहीं है।

समत्व के इस उच्चतम रूप को प्राप्त करने में बाधा हमारा मन है, जिसे विभाजित करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। इसे हावी होने देने के बजाय हमें इस पर नियंत्रण रखने में सक्षम होना चाहिए।

18. 'सत्य' एवं 'असत्य'

श्रीकृष्ण कहते हैं कि सत्य जो कि वास्तविकता और स्थायित्व है, कभी समाप्त नहीं होता है। असत्य जो कि भ्रम और अस्थायी है, का कोई अस्तित्व नहीं है। ज्ञानी वह है जो दोनों के बीच अंतर कर सके (2.16)।

सत्य और असत्य की पेचीदगियों को समझने के लिए कई संस्कृतियों में रस्सी और सांप की कहानी को अक्सर उद्धृत किया जाता है। एक आदमी शाम को घर वापस पहुंचा और पाया कि उसके घर के प्रवेश द्वार पर एक सांप कुंडली मारे बैठा है। लेकिन वास्तव में यह बच्चों द्वारा छोड़ी गई रस्सी थी, जो हल्के अंधेरे में सांप की तरह दिखती थी। यहां रस्सी सत्य और सांप असत्य का प्रतीक है। जब तक उसे सत्य यानी रस्सी का बोध नहीं हो जाता, तब तक वह असत्य यानी कल्पित सांप से निपटने के लिए कई रणनीतियाँ अपना सकता है। वह उस पर डंडे से हमला कर सकता है या भाग सकता है या उसकी वास्तविकता परखने के लिए मशाल जला सकता है। जब हमारी धारणा असत्य की होती है तो सर्वोत्तम रणनीतियाँ और कौशल व्यर्थ हो जाते हैं।

असत्य का अस्तित्व सत्य से होता है, जैसे रस्सी के बिना सर्प का अस्तित्व नहीं है। चूँकि असत्य का अस्तित्व

सत्य के कारण है, यह हमें किसी बुरे सपने की तरह प्रभावित कर सकता है जो हमारे शरीर को नींद में पसीने से तर-बतर कर सकता है।

असत्य की पहचान के लिए श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया परख का तरीका यह सिद्धांत है कि - 'जो अतीत में मौजूद नहीं था और भविष्य में नहीं होगा।' यदि हम इंद्रियजन्य सुख का उदाहरण लेते हैं, तो यह पहले भी नहीं था और कुछ समय बाद नहीं होगा। दर्द और अन्य सभी मामलों में भी ऐसा ही है। इस सम्बन्ध में संकेत यह है कि असत्य समय में मौजूद है जबकि सत्य शाश्वत है।

सत्य अंतरात्मा है जो शाश्वत है और अहंकार असत्य है जो अंतरात्मा के समर्थन से खुद को बनाए रखता है। जिस दिन हम रस्सी रुपी आत्मा की खोज कर लेते हैं, तब साँप रुपी अहंकार अपने आप गायब हो जाता है।

26. गुलाब कभी कमल नहीं बन सकता

श्रीकृष्ण स्वधर्म (2.31–2.37) के बारे में बताते हैं और अर्जुन को सलाह देते हैं कि क्षत्रिय होने के नाते उन्हें लड़ने में संकोच नहीं करना चाहिए (2.31) क्योंकि यह उनका स्वधर्म है।

श्रीकृष्ण गीता की शुरुआत उस से करते हैं जो शाश्वत, अव्यक्त और सभी में व्याप्त है। इसे आसानी से समझने के लिए आत्मा कहा जाता है। फिर वह स्वधर्म के बारे में बात करते हैं, जो उस से एक कदम पहले है और बाद में वह कर्म पर आते है।

अंतरात्मा की अनुभूति की यात्रा को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है। पहला चरण है हमारी वर्तमान स्थिति, दूसरा है स्वधर्म का बोध और अंत में, अंतरात्मा तक पहुंचना। वास्तव में, हमारी वर्तमान स्थिति हमारे स्वधर्म, अनुभवों, ज्ञान, स्मृतियों और हमारे अस्थिर मस्तिष्क द्वारा एकत्रित धारणाओं का एक संयोजन है। जब हम अपने आप को अपने मानसिक बोझ से मुक्त करते हैं तो स्वधर्म धीरे–धीरे स्पष्ट हो जाता है।

क्षत्रिय 'क्षत' और 'त्रय' का संयोजन है, क्षत का अर्थ है चोट और त्रय का अर्थ है सुरक्षा देना। क्षत्रिय वह है जो चोट से सुरक्षा देता है।

इसका सबसे अच्छा उदाहरण एक माँ का है जो गर्भ में बच्चे की रक्षा करती है और बच्चों की तब तक रक्षा करती है जब तक कि वे अपने आप खड़े नहीं हो जाते। तो वह पहली क्षत्रिय हैं जिनसे हम अपने जीवन में मिलते हैं। वह अप्रशिक्षित हो सकती है और उसे बच्चे की देखभाल का अनुभव नहीं हो सकता है लेकिन यह स्वाभाविक रूप से उसे आता है। यह प्रकृति स्वधर्म की झलक है।

एक बार एक गुलाब का फूल एक सुन्दर कमल के फूल को देखकर विस्मित हो गया और कमल बनने की इच्छा पालने लगा। लेकिन कोई उपाय नहीं है कि वह कमल बन जाए। जैसे गुलाब अपनी क्षमता से अलग होना चाहता है, ऐसी ही प्रवृत्ति हमारे भीतर भी है। जिसकी वजह से हम अर्जुन जैसा विषाद पाते रहते हैं। गुलाब अपना रंग, आकृति और आकार बदल सकता है, लेकिन फिर भी गुलाब ही रहेगा जो उसका स्वधर्म है।

34. कर्म प्राथमिक, कर्मफल नहीं

गीता के प्रतिष्ठित श्लोक 2.47 में, श्रीकृष्ण कहते हैं कि हमें कर्म करने का ही अधिकार है, उसके परिणाम यानी कर्मफल पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। वह आगे कहते हैं कि कर्मफल हमारे किसी भी कार्य के लिए प्रेरणा नहीं होना चाहिए और यह भी कि, हमें अकर्म की ओर झुकना नहीं चाहिए। यह गीता का सबसे उद्धृत श्लोक है, क्योंकि जीवन के विभिन्न आयामों में इसे देखा जा सकता है।

श्रीकृष्ण इंगित करते हैं (7.21–7.22) कि श्रद्धा चमत्कार कर सकती है। इस श्लोक का सबसे आसान तरीका यह है कि श्रीकृष्ण पर श्रद्धा रखकर बिना इसके तर्क में गहराई से उतरे या बिना इसके विभिन्न पहलुओं के विश्लेषण का प्रयास किए, अपने जीवन में इसे लागू करना चाहिए। हमें श्रीकृष्ण में अपनी श्रद्धा गहरी करनी चाहिए और उसका अभ्यास शुरू करना चाहिए। इस श्लोक के शाब्दिक अर्थ को व्यवहार में लाना ही हमें कर्मयोग के शिखर पर ले जा सकता है।

दूसरा पहलू यह है कि अपने कर्मों के परिणाम पर ध्यान केंद्रित करने से हम स्वयं कर्म से दूर हो जाएंगे और परिणामस्वरूप, कर्मफल से ही वंचित हो जाएंगे। जैसे

एक छात्र द्वारा खराब तरीके से निष्पादित हुए कर्म यानी पढ़ाई कभी भी वांछित कर्म के फल जो कि अच्छा परीक्षा परिणाम है, नहीं दे सकता है। श्रीकृष्ण इस बात पर जोर देते हैं कि हमें किसी भी परिस्थिति में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने पर ही ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

तीसरा, कर्म वर्तमान क्षण में होता है और कर्मफल हमेशा भविष्य में होता है, जो कई संभावनाओं का संयोजन है। श्रीकृष्ण हमेशा वर्तमान क्षण में रहने की सलाह देते हैं क्योंकि हमारे पास केवल वर्तमान पर नियंत्रण है परन्तु भविष्य या अतीत पर कोई नियंत्रण नहीं है।

दृष्टिकोण या समझ जो भी हो, इस श्लोक में सुख और दुख की कभी न खत्म होने वाली लहरों को पार करने में हमारी मदद करके हममें समत्व लाने की क्षमता है।

37. वही अर्जुन वही बाण

'वही अर्जुन वही बाण', यह एक मुहावरा है। इसका प्रयोग अक्सर ऐसी स्थिति का वर्णन करने के लिए किया जाता है जब एक सफल/सक्षम व्यक्ति काम पूरा करने में विफल रहता है।

एक योद्धा के रूप में अर्जुन कभी युद्ध नहीं हारे। अपने जीवन के उत्तरार्ध में, वह एक छोटी सी लड़ाई हार गए जिसमें उन्हें परिवार के कुछ सदस्यों को डाकुओं के समूह से बचाना था। वह इस स्थिति को अपने भाई को समझाते हैं और कहते हैं, ''मुझे नहीं पता कि क्या हुआ। मैं वही अर्जुन हूं और ये वही बाण थे जिन्होंने कुरुक्षेत्र का युद्ध जीता था, लेकिन इस बार मेरे बाणों को न तो अपना लक्ष्य मिला और न ही उनमें शक्ति थी।'' उन्होंने समझाया कि उन्हें भागना पड़ा और परिवार की रक्षा नहीं कर सके।

जीवन के अनुभव हमें बताते हैं कि ऐसा हममें से किसी के साथ भी हो सकता है। कई बार, प्रतिभाशाली खिलाड़ी कुछ समय के लिए अपना फॉर्म खो देते हैं। एक अभिनेता, गायक असफल हो जाता है। इसका दोष भाग्य, बुरे समय आदि को दिया जाता है और निश्चित रूप से कोई नहीं जानता कि क्यों। अनुमानों और शंकाओं को छोड़कर इसके लिए मुश्किल ही कोई वैज्ञानिक व्याख्या है।

इस संदर्भ में, कर्म और कर्मफल के बीच संबंध के बारे में बताते हुए, श्रीकृष्ण कहते हैं (18.14) कि दैवम कर्म की पूर्ति में योगदान करने वाले कारकों में से एक है। दैवम एक प्रकार का विशेष गुण है और एक प्रकट विश्व दृष्टिकोण से अज्ञात है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्म पर तुम्हारा अधिकार है, कर्मफल पर नहीं।

हस्तरेखा विज्ञान, ज्योतिष और सूर्य राशियों जैसी विद्याओं का अभ्यास किया जाता है, लेकिन उनमें से कोई भी दैवम नहीं है। इसी तरह, कोई वैज्ञानिक सिद्धांत नहीं है जिसके आधार पर दैवम की भविष्यवाणी की जा सके।

श्रीकृष्ण कहते हैं (11.33) हम निमित्त मात्र हैं, सर्वशक्तिमान की भव्य रचना का एक छोटा सा हिस्सा। असफलता हमें दुख नहीं पहुंचाएगी अगर हम सफलता मिलने पर अहंकार पैदा न होने दें तो, क्योंकि दोनों ही दैवम से प्रभावित हैं।

49. स्थितप्रज्ञ आंतरिक घटना है

अर्जुन के प्रश्न के जवाब में श्रीकृष्ण कहते हैं कि (2.55), स्थितप्रज्ञ स्वयं से संतुष्ट होता है। दिलचस्प बात यह है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन के प्रश्न के दूसरे भाग का जवाब नहीं दिया कि स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता है, बैठता है और चलता है।

'स्वयं के साथ संतुष्ट' विशुद्ध रूप से एक आंतरिक घटना है और बाहरी व्यवहार के आधार पर इसे मापने का कोई तरीका नहीं है। हो सकता है, दी गई परिस्थितियों में एक अज्ञानी और एक स्थितप्रज्ञ दोनों एक ही शब्द बोल सकते हैं, एक ही तरीके से बैठ और चल सकते हैं। इससे स्थितप्रज्ञ की हमारी समझ और भी जटिल हो जाती है।

श्रीकृष्ण का जीवन स्थितप्रज्ञ के जीवन का सर्वोत्तम उदाहरण है। जन्म के समय वह अपने माता-पिता से अलग हो गए थे। उन्हें माखन चोर के नाम से जाना जाता था। उनकी रासलीला, नृत्य और बांसुरी पौराणिक है, लेकिन जब उन्होंने वृंदावन छोड़ा तो वे रासलीला की तलाश में कभी वापस नहीं आए। वह जरूरत पड़ने पर लड़े, लेकिन कई बार युद्ध से बचते रहे और इसलिए उन्हें रण-छोड़-दास के रूप में जाना जाता था। उन्होंने कई चमत्कार दिखाए और वह दोस्तों के दोस्त रहे। जब विवाह

करने का समय आया तो उन्होंने विवाह किया और परिवारों का भरण–पोषण किया। चोरी के झूठे आरोपों को दूर करने के लिए समंतकमणि का पता लगाया और जब गीता ज्ञान देने का समय आया तो उन्होंने दिया। वह किसी साधारण व्यक्ति की तरह मृत्यु को प्राप्त हुए।

सबसे पहले, उनके जीवन का ढांचा है, वर्तमान में जीना है। दूसरे, यह कठिन परिस्थितियों के बावजूद आनंद और उत्सव का जीवन है, क्योंकि वह कठिनाइओं को अनित्य मानते थे। तीसरा, जैसा कि श्लोक 2.47 में उल्लेख किया गया है, उनके लिए स्वयं के साथ संतुष्ट का अर्थ निष्क्रियता नहीं है, लेकिन यह कर्तापन की भावना और कर्मफल की उम्मीद के बिना कर्म करना है।

मूल रूप से, यह अतीत के किसी बोझ या भविष्य से किसी अपेक्षा के बिना वर्तमान क्षण में जीना है। शक्ति वर्तमान क्षण में है और योजना और क्रियान्वयन सहित सब कुछ वर्तमान में होता है।

70. समय को एक मौका दें

एक फल विकसित होने और पकने के लिए अपने मूल पेड़ से पोषक तत्वों को अवशोषित करता है। फिर वह अपनी यात्रा शुरू करने के लिए पेड़ से अलग हो जाता है। मूल वृक्ष से मुक्ति की यात्रा की शुरुआत से अंत में स्वयं वृक्ष बनने तक विभिन्न क्रियाएं शामिल हैं। दूसरी ओर, एक अपरिपक्व फल को जनक वृक्ष से तब तक जुड़ा रहना चाहिए जब तक कि वह पक न जाए, यानी अपनी यात्रा स्वयं शुरू करने में वह सक्षम न हो जाये।

परन्तु, एक पके फल को अपरिपक्व फल को पेड़ छोड़ने का लालच नहीं देना चाहिए, क्योंकि यह अभी तक एक स्वतंत्र यात्रा शुरू करने के लिए तैयार नहीं है। यदि यह मूल वृक्ष से आवश्यक पोषण प्राप्त करने में समय नहीं लगाता है तो यह नष्ट हो जाएगा। इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं: परमात्मा के स्वरुप में अटल स्थित हुए ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह शास्त्रविहित कर्मों में आसक्तिवाले अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम अर्थात कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे। किन्तु स्वयं शास्त्रविहित समस्त कर्म भलीभांति करता हुआ उनसे भी वैसे ही करवाये (3.26)।

यह श्रीकृष्ण ने जो कहा (3.6) उन व्यक्तियों के

बारे में विस्तार है जो क्रिया के अंगों को बलपूर्वक नियंत्रित करते हैं, लेकिन जिनका मन अभी भी इंद्रिय विषयों के विचारों के चारों ओर घूमता है। वह उन्हें दम्भी कहते हैं जो स्वयं को बहका रहे हैं और यह उस अज्ञानी की स्थिति से अलग नहीं होगा जिसके कार्यों को एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा जबरन रोक दिया गया था।

सौ छात्रों की एक कक्षा में, प्रत्येक छात्र एक ही पाठ को अपनी समझ और मन की स्थिति के आधार पर अलग-अलग तरीके से समझता है। इसी प्रकार, एक संन्यासी जो जीवन में प्रेरित कार्यों की निरर्थकता को महसूस करता है, उसे ब्रह्मचारी को पारिवारिक जीवन से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। क्योंकि ब्रह्मचारी अपने पारिवारिक जीवन से ही प्रेरित कार्यों की निरर्थकता को बेहतर ढंग से सीख सकता है। इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं है।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन में गीता सीखने की भूख के जगने का इंतजार किया। तब तक, श्रीकृष्ण ने उन्हें सांसारिक कार्यों को करने दिया, और जीवन में सुख-दुख से गुजरने दिया। उपयुक्त क्षण आने पर गीता का उपदेश दिया। इस प्रकार, सीखना तब होता है जब इसके लिए एक आंतरिक भूख होती है। जहां प्रत्येक चीज जिसे हम देखते हैं और जीवन की प्रत्येक स्थिति जिसका हम सामना करते हैं वह शिक्षक बन सकती है।

82. हम जो बोते हैं, वही काटते हैं

भौतिक संस्थाएं पूर्वानुमेय व्यवहार और गुणों द्वारा नियंत्रित होती हैं। श्रीकृष्ण सभी शक्तिशाली अव्यक्त और प्रकट के बीच संबंधों में अंतर्दृष्टि देते हैं, जब वे कहते हैं: जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं (4.11)।

सबसे पहले, यह भगवान की ओर से एक आश्वासन है कि हम किसी भी मार्ग का अनुसरण करते हैं और भले ही ये मार्ग कितने ही विरोधाभासी हों, वे सभी अव्यक्त परमात्मा के मार्ग हैं। दूसरे, भगवान एक बहुआयामी दर्पण की तरह प्रतिक्रिया करते हैं जो हमारी भावनाओं, विचारों और कार्यों को प्रतिबिंबित और प्रतिध्वनित करते हैं। तीसरा, जब हम एक बीज बोते हैं, तो उसे एक पेड़ की पूर्ण क्षमता प्राप्त करने में समय लगता है और यह समय अंतराल हमें परमात्मा के प्रतिध्वनि के इस सिद्धांत को पूरी तरह से समझने से रोकता है।

अगर हम अपने जीवन को बिना शर्त प्यार और श्रद्धा से भर देते हैं, तो प्यार और श्रद्धा अनिवार्य रूप से हमारे जीवन को आनंदमय बनाने के लिए वापस आ जाती है। यदि हम क्रोध, भय, घृणा, क्रूरता या ईर्ष्या बोते हैं तो वही

हमारे जीवन को दयनीय बनाते हुए वापस परोसा जाएगा। इनके अनगिनत उदाहरण हैं और ध्यान देने वाली बात यह है कि बुवाई और कटाई के बीच के समय के अंतराल के कारण हम इन दोनों के बीच के पक्के संबंध को भूल जाते हैं।

यह श्लोक सूक्ष्म और स्थूल दोनों स्तरों पर कार्य करता है। अपने बड़े सपनों को साकार करने की तलाश में, हमें कभी भी छोटी-छोटी जीत से नहीं चूकना चाहिए जो हमें अनुभवात्मक स्तर पर सर्वोच्च चेतना का एहसास करने में मदद करती हैं।

श्रीकृष्ण आगे कहते हैं: इस मनुष्य लोक में कर्मों के फल को चाहने वाले लोग देवताओं का पूजन किया करते हैं; क्योंकि उनको कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि शीघ्र मिल जाती है (4.12)।

देवता और कुछ नहीं बल्कि परमात्मा की एक झलक हैं। परमात्मा को पाने के लिए हमें अहंकार को पूरी तरह छोड़ना पड़ता है, लेकिन इसमें समय लगता है। देवता परमात्मा को साकार करने की यात्रा में मध्य बिंदु हैं, जहाँ हमारा अहंकार अभी भी बाकी है।

101. कमल के पत्ते का अनुकरण

जीवन सहित प्रत्येक भौतिक प्रणाली अलग-अलग इनपुट लेती है और कुछ आउटपुट उत्पन्न करती है। हम शब्दों और कर्मों जैसे अपने आउटपुट को लगातार मापते या आंकते हैं। हम दूसरों के कार्यों के साथ-साथ अपने आस-पास की विभिन्न स्थितियों को भी आंकते हैं। वास्तव में, विकासवादी प्रक्रिया में, हमारे लिए खतरों को पहचानना बहुत जरूरी था। हालाँकि, समस्या कर्मों को सही या गलत निर्धारित करने के लिए मानकों के अभाव में है, जिसकी वजह से हम अक्सर अज्ञानता पर आधारित धारणाओं और विश्वास प्रणालियों पर निर्भर रहते हैं। जब भी हम किसी ऐसे कार्य का सामना करते हैं जो हमारे विश्वास प्रणाली के अनुरूप होता है, तो हम खुश और संतुष्ट महसूस करते हैं।

इस संबंध में, श्रीकृष्ण कहते हैं: जिसका मन अपने वश में है, जो जितेन्द्रिय एवम विशुद्ध अन्त:करणवाला है और संपूर्ण प्राणियों का आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता (5.7)। यह प्रभु की ओर से एक आश्वासन है कि हमारे कर्म किन परिस्थितियों में कलंकित नहीं होंगे।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्म किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा

किए जाने पर कलंकित नहीं होते हैं जो शुद्ध है अर्थात द्वेष और इच्छाओं से मुक्त है (5.3) और जिसने अपने स्वयं को सभी प्राणियों के स्वयं के रूप में महसूस किया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जब कोई अपने आप को सभी प्राणियों में देखता है तो कोई कारण नहीं है कि वह कलंकित कार्य या अपराध करता है। इसके विपरीत, हमारे और दूसरे के विभाजन की दृष्टि से किए जाने पर हमारे सभी कार्य दूषित हो जाते हैं।

जब हमारे आस-पास की स्थितियों को पहचानने की बात आती है, तो श्रीकृष्ण कहते हैं: जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता है (5.10)।

जब हमारे कर्मों के साथ-साथ दूसरों के कर्म भी भगवान को समर्पित होते हैं, तो विभाजन की कोई गुंजाइश नहीं होती है। तब हम जिन परिस्थितियों का सामना करेंगे वे नाटक और अभिनय प्रतीत होंगे, जहाँ हम अपनी भूमिका निभाते हैं और श्रीकृष्ण इसकी तुलना कमल के पत्ते से करते हैं।

107. परमानन्द के लिये ध्यान

पीनियल ग्रंथि एक मटर के आकार का, पाइन शंकु के प्रतिरूप का अंग है जो मस्तिष्क के केंद्र में, सीधे दो भौहों के बीच में स्थित होता है। शारीरिक रूप से यह न्यूरोट्रांसमीटर मेलाटोनिन और सेरोटोनिन का उत्पादन करता है जो क्रमशः नींद के साथ-साथ मनोदशा के लिए जिम्मेदार होते हैं। इसे तीसरी आंख के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि इसमें सामान्य आंख की तरह फोटोरिसेप्टर होते हैं।

सभी संस्कृतियों ने इसे विभिन्न तरीकों से वर्णित किया है; जैसे आत्मा के आसन; आध्यात्मिक ज्ञान के लिए जिम्मेदार; एक छठी इंद्रिय जो पांचों इंद्रियों से परे देख सकती है; आध्यात्मिक जागृति का प्रतीक; भौतिक और आध्यात्मिक दुनिया के बीच संबंध। भारतीय संदर्भ में, भौंहों के बीच की जगह को आज्ञा चक्र कहा जाता है जो पीनियल ग्रंथि का प्रतिनिधित्व करता है।

यह पृष्ठभूमि हमें इंद्रियों और मन को नियंत्रित करने के लिए श्रीकृष्ण की विधि को समझने में मदद करेगी, जब वे कहते हैं: बाहर के विषय भोगों को न चिंतन करता हुआ बाहर ही निकालकर और नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले

प्राण और अपानवायु को सम करके, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है वह सदा मुक्त ही है (5.27–28)। यह भगवान द्वारा अर्जुन को अपनी इंद्रियों, मन और बुद्धि को नियंत्रित करने में मदद करने के लिए दी गई एक विधि या तकनीक है।

'विज्ञान भैरव तंत्र' में भगवान शिव द्वारा दी गई 112 ऐसी विधियां हैं और ऐसी ही एक तकनीक कहती है, भौंहों के बीच एक बिंदु पर बिना विचारों के ध्यान लगाओ। दिव्य ऊर्जा टूटकर निकलती है और सिर के मुकुट तक ऊपर उठती है, तुरंत व्यक्ति को पूरी तरह से अपने परमानंद से भर देती है।

घायल क्षेत्रों पर हमारा ध्यान आकर्षित करने के लिए दर्द एक स्वचालित उपकरण है और यह हमें जीवित रहने में मदद करता है। इसी तरह, पीनियल ग्रंथि को सक्रिय करने के लिए भौंहों के बीच के क्षेत्र पर सचेत ध्यान लाना है और यह सक्रियता हमें किसी भी इंद्रियों की मदद के बिना आंतरिक परमानंद से भर देगी।

लेखक भारतीय प्रशासनिक सेवा में 30 से अधिक वर्षों से कार्यरत हैं। इस दौरान उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े हुए तमाम लोगों के साथ संवाद करने का और विभिन्न परिस्थितियों से अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिला। आंध्र प्रदेश में जन्मे और पले-बढ़े और पंजाब में काम करते हुए, वे विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और प्रवृत्तियों के संपर्क में आए। इंजीनियरिंग स्नातक होने के कारण वे विज्ञान और अध्यात्म में साम्य देखने में सक्षम हैं।

प्रशासनिक सेवा में रहते हुए उन्होंने गीता तथा कई ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। इसके अलावा उन्होंने व्यावहारिक अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के लिए अध्ययन अवकास लिया जिससे उन्हें मनोविज्ञान और मानव व्यवहार में नई अंतर्दृष्टि मिली।

यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता पर 148 लेखों का संकलन है। प्रत्येक लेख स्वतंत्र है जिसमें गीता के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या है। साधक अपनी सुविधा से किसी भी अध्याय को चुन सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता हमारे रोजमर्रा जीवन के मूलभूत विषयों को सम्बोधित करती है। यह जीवन वृक्ष की जड़ों के स्तर पर काम करती है जबकि हम टहनियों के स्तर पर उन्हें नियंत्रण करने का प्रयास करते हैं। इनमें चीजों की क्षणिक प्रकृति, भौतिक जगत की ध्रुवताएं और द्वैत, कर्मफल की प्रत्याशा के बिना कर्म करना, साक्षी होना, कर्तापन की भावना का त्याग करना जैसी अनेक बातें शामिल हैं। अनिवार्य रूप से, गीता इस बारे में है कि हम क्या हैं, न कि हम क्या करते हैं और हमारे पास क्या है।

यह संकलन श्रीमद्भगवद्गीता को समकालीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आसानी से समझने में सहायता करने का प्रयास है। एक बार जब कोई श्रीमद्भगवद्गीता को जानकर अपने व्यवहार में लाता है उन्हें जीवन के हर पहलू में असीम आनंद मिलता है।

Forever Learning
ISBN 978-93-5205-684-2
9 789352 056842
www. unistarbooks.com ₹ 345/-

गीता आचरण

के. शिव प्रसाद